

स श्रीमज्जितशत्रुराजतनुजः श्रीदत्तनामा मुनि-
 भूत्वा देवकृतप्रकष्टमतुलं सोढ्वा शुभध्यानतः।
 हत्वाशेषनिबन्धनानि नितरां प्राप्तः श्रियं शाश्वतीं
 स श्रीकेवललोचनो जिनपतिर्दद्यात्स्वभक्तिं मम ॥१६॥

इति कथाकोशे श्रीदत्तमुनेराख्यानं समाप्तम्।

६५. श्रीवृषभसेनस्याख्यानम्

प्रोल्लसत्परमानन्द-जगद्वन्द्यं जिनेश्वरम्। नत्वा वृषभसेनस्य चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
 उज्जयिन्यां महाराजः प्रद्योताख्यो गुणोज्ज्वलः। मदोन्मत्तगजारूढो गजार्थमटवीं गतः ॥२॥
 नीतो मत्तगजेनासौ सुदूरं भूरिदुःखतः। वृक्षशाखां नृपः प्रोचैरवलम्ब्यावतीर्य च ॥३॥
 एकाकी तु समागच्छन्खेटग्रामे मनोहरे। स्थितः कूपतटे यावज्जिनपालस्य धीमतः ॥४॥
 ग्रामकूटस्य तोयार्थं जिनदत्तागता सुता। तदा तेन नरेन्द्रेण जलं पातुं प्रयाचिता ॥५॥
 महान्तं पुरुषं ज्ञात्वा दत्त्वा तस्मै जलं मुदा। सा ततो गृहमागत्य तां वार्त्तां स्वपितुर्जगौ ॥६॥
 ततोसौ जिनपालेन समागत्य प्रभक्तितः। नीत्वा गृहं सुखस्नानं भोजनं कारितो नृपः ॥७॥

जितशत्रु राजा के पुत्र श्रीदत्त मुनि देवकृत कष्टों को बड़ी शान्ति के साथ सहकर अन्त में शुक्लध्यान द्वारा सब कर्मों का नाश कर मोक्ष गए। वे केवलज्ञानी भगवान् मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें, जिससे मुझे भी शान्ति प्राप्त हो ॥१६॥

६५. वृषभसेन की कथा

जिन्हें सारा संसार बड़े आनन्द के साथ सिर झुकाता है, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर वृषभसेन का चरित लिखा जाता है ॥१॥

उज्जैन के राजा प्रद्योत एक दिन उन्मत्त हाथी पर बैठकर हाथी पकड़ने के लिए स्वयं किसी एक घने जंगल में गए। हाथी इन्हें बड़ी दूर ले भागा और आगे-आगे भागता ही चला जाता था। इन्होंने उसके ठहराने की बड़ी कोशिश की, पर उसमें वे सफल नहीं हुए। भाग्य से हाथी एक झाड़ के नीचे होकर जा रहा था कि इन्हें सुबुद्धि सूझ गई वे उसकी टहनी पकड़ कर लटक गए और फिर धीरे-धीरे नीचे उतर आए। यहाँ से चलकर वे खेट नाम के एक छोटे से पर बहुत सुन्दर गाँव के पास पहुँचे। एक पनघट पर जाकर ये बैठ गये। उन्हें बड़ी प्यास लग रही थी। इन्होंने उसी समय पनघट पर पानी भरने को आई हुई जिनपाल की लड़की जिनदत्ता से जल पिला देने के लिए कहा। उसने इनके चेहरे के रंग-ढंग से इन्हें कोई बड़ा आदमी समझ जल पिला दिया। बाद में अपने घर पर आकर उसने प्रद्योत का हाल अपने पिता से कहा। सुनकर जिनपाल दौड़ा हुआ आकर उन्हें अपने घर लिवा लाया और बड़े आदर सत्कार के साथ उसने उन्हें स्नान-भोजन कराया। प्रद्योत उसकी इस मेहमानी से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जिनपाल को अपना सब परिचय दिया। जिनपाल ने ऐसे महान् अतिथि द्वारा अपना घर

दानं स्तोकतरं चापि प्रस्तावे शर्मकोटिदम्। प्रावृट्काले यथा चोप्तं बीजं भूरिफलं भवेत् ॥८॥
 भृत्यादौ च समायाते स प्रद्योतो महीपतिः। महोत्सवशतैस्तत्र तां कन्यां परिणीय च ॥९॥
 चक्रे पट्टमहाराज्ञीं जिनदत्तां गुणोज्ज्वलाम्। नाना भोगान्प्रभुञ्जानः संस्थितो निजलीलया ॥१०॥
 कैश्चिद्विनैस्ततस्तस्याः सुतोत्पत्तिनिशाक्षणे। स्वप्ने राज्ञा समालोक्य वृषभं सुमनोहरम् ॥११॥
 पुत्रो वृषभसेनोयं संप्रोक्तः परया मुदा। जिनेन्द्रभवनोत्साहस्नानपूजाप्रदानतः ॥१२॥
 एवं सत्कर्मभिर्नित्यं गते संवत्सराष्टके। राजा प्रद्योतनामासौ प्राप्तसौख्यपरम्पराम् ॥१३॥
 पुत्रं प्राह सुधी राज्यं त्वं गृहाण सुतोत्तम। मया श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तं सत्तपः क्रियतेऽधुना ॥१४॥
 सुतेनोक्तमहो तात किं राज्यं कुर्वतोऽङ्गिनः। परलोकमहासिद्धिर्विद्यते नैव भूतले ॥१५॥
 राजा जगाद भो पुत्र नैव मुक्तिस्तपो विना। मुक्तेः संसाधनं जैनं तपः प्रोक्तं यतो बुधैः ॥१६॥

पवित्र होने से अपने को बड़ा भाग्यशाली माना। वे कुछ दिन वहाँ और ठहरे। इतने में उनके सब नौकर-चाकर भी उन्हें लिवाने को आ गए। प्रद्योत अपने शहर जाने को तैयार हुए। इसके पहले एक बात कह देने की है कि जिनदत्ता को जबसे प्रद्योत ने देखा तब ही से उनका उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया था और इसी से जिनपाल की सम्मति पा उन्होंने उसके साथ ब्याह भी कर लिया था। दोनों नव दम्पति सुख के साथ अपने राज्य में आ गए। जिनदत्ता को तब प्रद्योत ने अपनी पट्टरानी का सम्मान दिया। सच है, समय पर दिया हुआ थोड़ा भी दान बहुत ही सुखों का देने वाला होता है। जैसे वर्षाकाल में बोया हुआ बीज बहुत फलता है। जिनदत्ता के उस जलदान से, जो उसने प्रद्योत को किया था, जिनदत्ता को एक राजरानी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे नये दम्पति सुख से समय बिताने लगे, प्रतिदिन नये-नये सुखों का स्वाद लेने में इनके दिन कटने लगे ॥२-१०॥

कुछ दिनों बाद इनके एक पुत्र हुआ। जिस दिन पुत्र होने वाला था, उसी रात को राजा प्रद्योत ने सपने में एक सफेद बैल को देखा था। इसलिए पुत्र का नाम भी उन्होंने वृषभसेन रख दिया। पुत्र-लाभ होने के बाद राजा की प्रवृत्ति धर्म-कार्यों की ओर अधिक झुक गई वे प्रतिदिन पूजा, प्रभावना, अभिषेक, दान आदि पवित्र कार्यों को बड़ी भक्ति-श्रद्धा के साथ करने लगे। इसी तरह सुख के साथ कोई आठ बरस बीत गए। जब वृषभसेन कुछ होशियार हुआ तब एक दिन राजा ने उससे कहा-बेटा, अब तुम अपने इस राज्य के कार्य-भार को सम्भालो। मैं अब जिन भगवान् के उपदेश किए पवित्र तप को ग्रहण करता हूँ। वही शान्ति प्राप्ति का कारण है। वृषभसेन ने तब कहा-पिताजी, आप तप क्यों ग्रहण करते हैं, क्या परलोक-सिद्धि, मोक्ष-प्राप्ति राज्य करते हुए नहीं हो सकती है? राजा ने कहा-बेटा हाँ, जिसे सच्ची सिद्धि या मोक्ष कहते हैं, वह बिना तप किए नहीं होती। जिन भगवान् ने मोक्ष का कारण एक मात्र तप बताया है। इसलिए आत्महित करने वालों को उसका ग्रहण करना अत्यन्त ही आवश्यक है। राजपुत्र वृषभसेन ने तब कहा-पिताजी, यदि यह बात है तो फिर मैं इस दुःख के कारण राज्य को लेकर क्या करूँगा? कृपाकर यह भार मुझ पर न रखिए। राजा ने वृषभसेन को

यद्यैवं निश्चयस्तात दुःखदे राज्यकर्मणि। निर्वृत्तिर्ममाप्यस्ति भवत्पादप्रसादतः ॥१७॥
 पुत्रवाक्यं समाकर्ण्य भ्रातृव्याय महोत्सवैः। दत्त्वा राज्यं स्वपुत्रेण सार्द्धं जातो मुनिर्नृपः ॥१८॥
 स श्रीवृषभसेनाख्यो मुनिः श्रीजिनभाषितम्। तपः कुर्वस्तदैकाकी विहरन्भुवतोत्तमः ॥१९॥
 कौशाम्बीपत्तनाभ्यर्णो पर्वतोरुशिलातले। ज्येष्ठमासे सुधीर्योगं ददात्यातापनं सदा ॥२०॥
 तत्प्रभावं समालोक्य सर्वे भव्यजनास्तदा। श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मे संजाताः सुतरां रताः ॥२१॥
 एकदासौ मुनिर्धीरश्चारुचारित्रमंडितः। निर्गतो देहयात्रार्थं जैनतत्त्वविदांवरः ॥२२॥
 तदा चेष्ट्यापरः पापी बुद्धदासः कुवन्दकः। तां शिलां पावकेनोच्चैरग्निवर्णां चकार सः ॥२३॥
 साधूनां सुप्रभावस्तु सहाते नैव दुर्जनैः। यथा भानुप्रभावश्च घूकानां न सुखायते ॥२४॥
 चर्या कृत्वा समागत्य शिलामालोक्य तादृशीम्। सत्प्रतिज्ञापरः स्वामी स श्रीवृषभसेनवाक् ॥२५॥
 सारसंन्यासमादाय निश्चलो मुनिसत्तमः। स्थितो यावच्छिलापीठे तावत्त्रैलोक्यपूजितम् ॥२६॥
 केवलज्ञानमुत्पाद्य निर्वाणं प्राप्तवान्सुधीः। अहो मेरोरपि व्यक्तं चारित्रं निश्चलं सताम् ॥२७॥

बहुत समझाया, पर उसके ध्यान में तप छोड़कर राज्यग्रहण करने की बात बिल्कुल न आयी। लाचार हो राजा राज्यभार अपने भतीजे को सौंपकर आप पुत्र के साथ जिनदीक्षा ले ली ॥११-१८॥

यहाँ से वृषभसेन मुनि तपस्या करते हुए अकेले ही देश, विदेशों में धर्मोपदेशार्थ घूमते-फिरते एक दिन कौशाम्बी के पास आ एक छोटी-सी पहाड़ी पर ठहरे। समय गर्मी का था। बड़ी तेज धूप पड़ती थी। मुनिराज एक पवित्र शिला पर कभी बैठे और कभी खड़े इस कड़ी धूप में योग साधा करते थे। उनकी इस कड़ी तपस्या और आत्मतेज से दिपते हुए उनके शारीरिक सौन्दर्य को देख लोगों की उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई जैनधर्म पर उनका विश्वास खूब दृढ़ जम गया ॥१९-२१॥

एक दिन चारित्रचूड़ामणि श्रीवृषभसेन मुनि आहार के लिए शहर में गए हुए थे कि पीछे से किसी जैनधर्म के प्रभाव को न सहने वाले बुद्धदास नाम के बुद्धधर्मी ने मुनिराज के ध्यान करने की शिला को आग से तपाकर लाल सुर्ख कर दिया। सच है, साधु-महात्माओं का प्रभाव दुर्जनों से नहीं सहा जाता। जैसे सूरज के तेज को उल्लू नहीं सह सकता। जब मुनिराज आहार कर लौटे और उन्होंने शिला को अग्नि की तपी हुई देखा, यदि वे चाहते और भौतिक शरीर से उन्हें मोह होता तो बिना शक वे अपनी रक्षा कर सकते थे। पर उनमें यह बात न थी; वे कर्तव्यशील थे, अपनी प्रतिज्ञाओं का पालना वे सर्वोच्च समझते थे। यही कारण था कि वे संन्यास की शरण ले उस आग से धधकती शिला पर बैठ गए। उस समय उनके परिणाम इतने ऊँचे चढ़े कि उन्हें शिला पर बैठते ही केवलज्ञान हो गया और उसी समय अघातिया कर्मों का नाश कर उन्होंने निर्वाण-लाभ किया। सच है, महापुरुषों का चारित्र मेरु से भी कहीं अधिक स्थिर होता है ॥२२-२७॥

यच्चित्तोन्नतपर्वतस्य पुरतः प्रोत्तुङ्गभूभृद्गणोऽ-
णुत्वं याति सरित्पतिस्तु नितरां दर्भाग्रबिन्दूपमाम्।
स श्रीमान्वृषभादिसेनजिनपः प्रध्वस्तकर्मा विभु-
र्दद्यात्स्वस्य गुणश्रियं गुणनिधिर्मे सर्वसिद्धिप्रदाम् ॥२८॥
इति कथाकोशे श्रीवृषभसेनमुनेराख्यानं समाप्तम्।

६६. कार्तिकेयमुनेराख्यानम्

केवलज्ञानसन्नेत्रं पवित्रं शर्मकारणम्। नत्वा जिनं प्रवक्ष्यामि कार्तिकेयकथानकम् ॥१॥
कार्तिकाख्यपुरे राजा संजातोऽग्न्यभिधानकः। राज्ञी वीरमती पुत्री कृतिका रूपमण्डिता ॥२॥
साथ नन्दीश्वराष्टम्यामुपवासं विधाय च। कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां शेषां पित्रे सुता ददौ ॥३॥
तदा तद्रूपमालोक्य दिव्यं राजाग्निवाक् कुधीः। सर्वलिङ्गीन्द्रजादींश्च दुष्टात्मा कामुकोऽवदत् ॥४॥
उत्पन्नं मद्गृहे रत्नं कस्य भो भवति ध्रुवम्। ब्रूत यूयं तदाकर्ण्य जगुस्ते मुग्धमानसाः ॥५॥
भो नरेन्द्र तवैव स्यात्ततः प्राहुर्मुनीश्वराः। कन्यारत्नं विना देव सर्वं ते नात्र संशयः ॥६॥

जिसके चित्तरूपी अत्यन्त ऊँचे पर्वत की तुलना में बड़े-बड़े पर्वत एक ना कुछ चीज परमाणु की तरह दीखने लगते हैं, समुद्र दूबा की अणी पर ठहरे जल कण सा प्रतीत होता है, वे गुणों के समुद्र और कर्मों को नाश करने वाले वृषभसेन जिन मुझे अपने गुण प्रदान करें, जो सब मनचाही सिद्धियों के देने वाले हैं ॥२८॥

६६. कार्तिकेय मुनि की कथा

संसार के सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को देखने जानने के लिए केवलज्ञान जिनका सर्वोत्तम नेत्र है और जो पवित्रता की प्रतिमा और सब सुखों के दाता हैं, उन जिन भगवान् को नमस्कार कर कार्तिकेय मुनि की कथा लिखी जाती है ॥१॥

कार्तिकपुर के राजा अग्निदत्त की रानी वीरवती के कृतिका नाम की एक लड़की थी। एक बार अठाई के दिनों में उसने आठ दिन के उपवास किए। अन्त के दिन वह भगवान् की पूजा कर शेषा को-भगवान् के लिए चढ़ाई फूलमाला को लाई। उसे उसने अपने पिता को दिया। उस समय उसकी दिव्य रूपराशि को देखकर उसके पिता अग्निदत्त की नियत ठिकाने न रही। काम के वश हो उस पापी ने बहुत से अन्य धर्मी और कुछ जैन साधुओं को इकट्ठा कर उनसे पूछा-योगी-महात्माओं, आप कृपा कर मुझे बतलावें कि मेरे घर में पैदा हुए रत्न का मालिक मैं ही हो सकता हूँ या कोई और? राजा का प्रश्न पूरा होता है कि सब ओर से एक ही आवाज आई कि महाराज, उस रत्न के तो आप ही मालिक हो सकते हैं, न कि दूसरा। पर जैन साधुओं ने राजा के प्रश्न पर कुछ गहरा विचार कर इस रूप में राजा के प्रश्न का उत्तर दिया-राजन्, यह बात ठीक है कि अपने यहाँ उत्पन्न हुए रत्न के मालिक आप हैं, पर एक कन्या-रत्न को छोड़कर। उसकी मालिकी पिता के नाते से ही आप कर सकते हैं और रूप